# रोज़

**सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय**

प्रसिद्ध कवि, लेखक एवं स्वाधीनता संग्राम सेनानी। प्रयोगवादी कविता के जनक और प्रतीक पत्रिका के संपादक। फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित।

दोपहर में उस सूने आँगन में पैर रखते हुए मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही हो, उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य, अस्पृश्य, किन्तु फिर भी बोझल और प्रकम्पमय और घना-सा फैल रहा था...मेरी आहट सुनते ही मालती बाहर निकली। मुझे देखकर, पहचानकर उसकी मुरझायी हुई मुख-मुद्रा तनिक से मीठे विस्मय से जागी-सी और फिर पूर्ववत् हो गयी। उसने कहा, "आ जाओ!" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये भीतर की ओर चली। मैं भी उसके पीछे हो लिया।

भीतर पहुँचकर मैंने पूछा, 'वे यहाँ नहीं है?'

"अभी आये नहीं, दफ़्तर में हैं। थोड़ी देर में आ जाएँगे। कोई डेढ़-दो बजे आया करते हैं।"

"कब के गये हुए हैं?"

"सवेरे उठते ही चले जाते हैं।"

"मैं 'हूँ' कर पूछने को हुआ, "और तुम इतनी देर क्या करती हो?" पर फिर सोचा, 'आते ही एकाएक प्रश्न ठीक नहीं हैं। मैं कमरे के चारों ओर देखने लगा।

मालती एक पंखा उठा लायी, और मुझे हवा करने लगी। मैंने आपत्ति करते हुए कहा, "नहीं, मुझे नहीं चाहिए।" पर वह नहीं मानी, बोली,"वाह! चाहिए कैसे नहीं? इतनी धूप में तो आये हो। यहाँ तो..."

मैंने कहा, "अच्छा, लाओ, मुझे दे दो।"

वह शायद 'ना' करनेवाली थी, पर तभी दूसरे कमरे से शिशु के रोने की आवाज़ सुनकर उसने चुपचाप पंखा मुझे दे दिया और घुटनों पर हाथ टेककर एक थकी हुई 'हुंह' करके उठी और भीतर चली गयी।

मैं उसके जाते हुए, दुबले शरीर को देखकर सोचता रहा – यह क्या है... यह कैसी छाया-सी इस घर पर छायी हुई है...

मालती मेरी दूर के रिश्ते की बहन है किन्तु उसे सखी कहना ही उचित है, क्योंकि हमारा परस्पर सम्बन्ध सख्य का ही रहा है। हम बचपन से इकट्ठे खेले हैं, इकट्ठे लड़े और पिटे हैं, और हमारी पढ़ाई भी बहुत-सी इकट्ठे ही हुई थी, और हमारे व्यवहार में सदा सख्य की स्वेच्छा और स्वच्छन्दता रही है, वह कभी भ्रातृत्व के या बड़े-छोटेपन के बन्धनों में नहीं घिरा...

मैं आज कोई चार वर्ष बाद उसे देखना आया हूँ। जब मैंने उसे इससे पूर्व देखा था, तब वह लड़की ही थी, अब वह विवाहिता है, एक बच्चे की माँ भी है। इससे कोई परिवर्तन उसमें आया होगा और यदि आया होगा तो क्या, यह मैंने अभी तक सोचा नहीं था, किन्तु अब उसकी पीठ की ओर देखता हुआ मैं सोच रहा था, यह कैसी छाया इस घर पर छायी हुई है...और विशेषतया मालती पर....

मालती बच्चे को लेकर लौट आयी और फिर मुझसे कुछ दूर नीचे बिछी हुई दरी पर बैठ गयी। मैंने अपनी कुरसी घुमाकर कुछ उसकी ओर उन्मुख होकर पूछा, "इसका नाम क्या है?"

मालती ने बच्चे की ओर देखते हुए उत्तर दिया, "नाम तो कोई निश्चित नहीं किया, वैसे टिटी कहते हैं।"

मैंने उसे बुलाया, "टिटी, टीटी, आ जा," पर वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी ओर देखता हुआ अपनी माँ से चिपट गया, और रुआँसा-सा होकर कहने लगा, "उहुं-उहुं-उहुं-ऊं..."

मालती ने फिर उसकी ओर एक नज़र देखा, और फिर बाहर आँगन की ओर देखने लगी...

काफ़ी देर मौन रहा। थोड़ी देर तक तो वह मौन आकस्मिक ही था, जिसमें मैं प्रतीक्षा में था कि मालती कुछ पूछे, किन्तु उसके बाद एकाएक मुझे ध्यान हुआ, मालती ने कोई बात ही नहीं की... यह भी नहीं पूछा कि मैं कैसा हूँ, कैसे आया हूँ... चुप बैठी है, क्या विवाह के दो वर्ष में ही वह बीते दिन भूल गयी? या अब मुझे दू-इस विशेष अन्तर पर-रखना चाहती है? क्योंकि वह निर्बाध स्वच्छन्दता अब तो नहीं हो सकती... पर फिर भी, ऐसा मौन, जैसा अजनबी से भी नहीं होना चाहिए...

मैंने कुछ खिन्न-सा होकर, दूसरी ओर देखते हुए कहा, "जान पड़ता है, तुम्हें मेरे आने से विशेष प्रसन्नता नहीं हुई-"

उसने एकाएक चौंककर कहा, "हूँ?"

यह 'हूँ' प्रश्न-सूचक था, किन्तु इसलिए नहीं कि मालती ने मेरी बात सुनी नहीं थी, 'केवल विस्मय के कारण। इसलिए मैंने अपनी बात दुहरायी नहीं, चुप बैठ रहा। मालती कुछ बोली ही नहीं, तब थोड़ी देर बाद मैंने उसकी ओर देखा। वह एकटक मेरी ओर देख रही थी, किन्तु मेरे उधर उन्मुख होते ही उसने आँखें नीची कर लीं। फिर भी मैंने देखा, उन आँखों में कुछ विचित्र-सा भाव था, मानो मालती के भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रहा हो, किसी बीती हुई बात को याद करने की, किसी बिखरे हुए वायुमंडल को पुनः जगाकर गतिमान करने की, किसी टूटे हुए व्यवहार-तन्तु को पुनरुज्जीवित करने की, और चेष्टा में सफल न हो रहा हो... वैसे जैसे देर से प्रयोग में न लाये हुए अंग को व्यक्ति एकाएक उठाने लगे और पाये कि वह उठता ही नहीं है, चिरविस्मृति में मानो मर गया है, उतने क्षीण बल से (यद्यपि वह सारा प्राप्य बल है) उठ नहीं सकता... मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो किसी जीवित प्राणी के गले में किसी मृत जन्तु का तौक डाल दिया गया हो, वह उसे उतारकर फेंकना चाहे, पर उतार न पाये...

तभी किसी ने किवाड़ खटखटाये। मैंने मालती की ओर देखा, पर वह हिली नहीं। जब किवाड़ दूसरी बार खटखटाये गये, तब वह शिशु को अलग करके उठी और किवाड़ खोलने गयी।

वे, यानी मालती के पति आये। मैंने उन्हें पहली बार देखा था, यद्यपि फ़ोटो से उन्हें पहचानता था। परिचय हुआ। मालती खाना तैयार करने आँगन में चली गयी, और हम दोनों भीतर बैठकर बातचीत करने लगे, उनकी नौकरी के बारे में, उनके जीवन के बारे में, उस स्थान के बारे में और ऐसे अन्य विषयों के बारे में जो पहले परिचय पर उठा करते हैं, एक तरह का स्वरक्षात्मक कवच बनकर...

मालती के पति का नाम है महेश्वर। वह एक पहाड़ी गाँव में सरकारी डिस्पेन्सरी के डॉक्टर हैं, उसी हैसियत से इन क्वार्टरों में रहते हैं। प्रातःकाल सात बजे डिस्पेन्सरी चले जाते हैं और डेढ़ या दो बजे लौटते हैं, उसके बाद दोपहर-भर छुट्टी रहती है, केवल शाम को एक-दो घंटे फिर चक्कर लगाने के लिए जाते हैं, डिस्पेन्सरी के साथ के छोटे-से अस्पताल में पड़े हुए रोगियों को देखने और अन्य ज़रूरी हिदायतें करने... उनका जीवन भी बिलकुल एक निर्दिष्ट ढर्रे पर चलता है, नित्य वही काम, उसी प्रकार के मरीज, वही हिदायतें, वही नुस्खे, वही दवाइयाँ। वह स्वयं उकताये हुए हैं और इसीलिए और साथ ही इस भयंकर गरमी के कारण वह अपने फ़ुरसत के समय में भी सुस्त ही रहते हैं...

> **मालती मेरी ओर देखकर बोली, "ऐसे ही होते हैं, डॉक्टर, सरकारी अस्पताल है न, क्या परवाह है! मैं तो रोज़ ही ऐसी बातें सुनती हूँ! अब कोई मर-मुर जाए तो ख़याल ही नहीं होता। पहले तो रात-रात-भर नींद नहीं आया करती थी।"**

मालती हम दोनों के लिए खाना ले आयी। मैंने पूछा, "तुम नहीं खोओगी? या खा चुकीं?"

महेश्वर बोले, कुछ हँसकर, "वह पीछे खाया करती है..." पति ढाई बजे खाना खाने आते हैं, इसलिए पत्नी तीन बजे तक भूखी बैठी रहेगी!

महेश्वर खाना आरम्भ करते हुए मेरी ओर देखकर बोले, "आपको तो खाने का मज़ा क्या ही आयेगा ऐसे बेवक़्त खा रहे हैं?"

मैंने उत्तर दिया, "वाह! देर से खाने पर तो और अच्छा लगता है, भूख बढ़ी हुई होती है, पर शायद मालती बहिन को कष्ट होगा।"

मालती टोककर बोली, "ऊँहू, मेरे लिए तो यह नयी बात नहीं है... रोज़ ही ऐसा होता है..."

मालती बच्चे को गोद में लिये हुए थी। बच्चा रो रहा था, पर उसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं दे रहा था।

मैंने कहा, "यह रोता क्यों है?"

मालती बोली, "हो ही गया है चिड़चिड़ा-सा, हमेशा ही ऐसा रहता है।"

फिर बच्चे को डाँटकर कहा, "चुपकर।" जिससे वह और भी रोने लगा, मालती ने भूमि पर बैठा दिया। और बोली, "अच्छा ले, रो ले।" और रोटी लेने आँगन की ओर चली गयी!

जब हमने भोजन समाप्त किया तब तीन बजने वाले थे। महेश्वर ने बताया कि उन्हें आज जल्दी अस्पताल जाना है, यहाँ

एक-दो चिन्ताजनक केस आये हुए हैं, जिनका ऑपरेशन करना पड़ेगा... दो की शायद टाँग काटनी पड़े, गैंग्रीन हो गया है... थोड़ी ही देर में वह चले गये। मालती किवाड़ बन्द कर आयी और मेरे पास बैठने ही लगी थी कि मैंने कहा, "अब खाना तो खा लो, मैं उतनी देर टिटी से खेलता हूँ।"

वह बोली, "खा लूँगी, मेरे खाने की कौन बात है," किन्तु चली गयी। मैं टिटी को हाथ में लेकर झुलाने लगा, जिससे वह कुछ देर के लिए शान्त हो गया।

दू...शायद अस्पताल में ही, तीन खड़के। एकाएक मैं चौंका, मैंने सुना, मालती वहीं आँगन में बैठी अपने-आप ही एक लम्बी-सी थकी हुई साँस के साथ कह रही है "तीन बज गये..." मानो बड़ी तपस्या के बाद कोई कार्य सम्पन्न हो गया हो...

थोड़ी ही देर में मालती फिर आ गयी, मैंने पूछा, "तुम्हारे लिए कुछ बचा भी था? सब-कुछ तो..."

"बहुत था।"

"हाँ, बहुत था, भाजी तो सारी मैं ही खा गया था, वहाँ बचा कुछ होगा नहीं, यों ही रौब तो न जमाओ कि बहुत था।" मैंने हँसकर कहा।

मालती मानो किसी और विषय की बात कहती हुई बोली, "यहाँ सब्ज़ी-वब्ज़ी तो कुछ होती ही नहीं, कोई आता-जाता है, तो नीचे से मँगा लेते हैं; मुझे आये पन्द्रह दिन हुए हैं, जो सब्ज़ी साथ लाये थे वही अभी बरती जा रही है...

मैंने पूछा, "नौकर कोई नहीं है?"

"कोई ठीक मिला नहीं, शायद एक-दो दिन में हो जाए।"

"बरतन भी तुम्हीं माँजती हो?"

"और कौन?" कहकर मालती क्षण-भर आँगन में जाकर लौट आयी।

मैंने पूछा, "कहाँ गयी थीं?"

"आज पानी ही नहीं है, बरतन कैसे मँजेंगे?"

"क्यों, पानी को क्या हुआ?"

"रोज़ ही होता है... कभी वक़्त पर तो आता नहीं, आज शाम को सात बजे आएगा, तब बरतन मँजेंगे।"

"चलो, तुम्हें सात बजे तक छुट्टी हुई," कहते हुए मैं मन-ही-मन सोचने लगा, 'अब इसे रात के ग्यारह बजे तक काम करना पड़ेगा, छुट्टी क्या खाक हुई?'

यही उसने कहा। मेरे पास कोई उत्तर नहीं था, पर मेरी सहायता टिटी ने की, एकाएक फिर रोने लगा और मालती के पास जाने की चेष्टा करने लगा। मैंने उसे दे दिया।

थोड़ी देर फिर मौन रहा, मैंने जेब से अपनी नोटबुक निकाली और पिछले दिनों के लिखे हुए नोट देखने लगा, तब मालती को याद आया कि उसने मेरे आने का कारण तो पूछा नहीं, और बोली, "यहाँ आये कैसे?"

मैंने कहा ही तो, "अच्छा, अब याद आया? तुमसे मिलने आया था, और क्या करने?"

"तो दो-एक दिन रहोगे न?"

"नहीं, कल चला जाऊँगा, ज़रूरी जाना है।"

मालती कुछ नहीं बोली, कुछ खिन्न सी हो गयी। मैं फिर नोटबुक की तरफ़ देखने लगा।

थोड़ी देर बाद मुझे भी ध्यान हुआ, मैं आया तो हूँ मालती से मिलने किन्तु, यहाँ वह बात करने को बैठी है और मैं पढ़ रहा हूँ, पर बात भी क्या की जाये? मुझे ऐसा लग रहा था कि इस घर पर जो छाया घिरी हुई है, वह अज्ञात रहकर भी मानो मुझे भी वश में कर रही है, मैं भी वैसा ही नीरस निर्जीव-सा हो रहा हूँ, जैसे-हाँ, जैसे यह घर, जैसे मालती...

**मैंने देखा, उन आँखों में कुछ विचित्र-सा भाव था, मानो मालती के भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रहा हो, किसी बीती हुई बात को याद करने की, किसी बिखरे हुए वायुमंडल को पुनः जगाकर गतिमान करने की, किसी टूटे हुए व्यवहार-तन्तु को पुनरुज्जीवित करने की, और चेष्टा में सफल न हो रहा हो... वैसे जैसे देर से प्रयोग में न लाये हुए अंग को व्यक्ति एकाएक उठाने लगे और पाये कि वह उठता ही नहीं है, चिरविस्मृति में मानो मर गया है।**

मैंने पूछा, "तुम कुछ पढ़ती-लिखती नहीं?" मैं चारों और देखने लगा कि कहीं किताबें दीख पड़ें।

"यहाँ!" कहकर मालती थोड़ा-सा हँस दी। वह हँसी कह रही थी, 'यहाँ पढ़ने को है क्या?'

मैंने कहा, "अच्छा, मैं वापस जाकर ज़रूर कुछ पुस्तकें भेजूँगा..." और वार्तालाप फिर समाप्त हो गया...

थोड़ी देर बाद मालती ने फिर पूछा, "आये कैसे हो, लारी में?"

"पैदल।"

"इतनी दू? बड़ी हिम्मत की।"

"आख़िर तुमसे मिलने आया हूँ।"

"ऐसे ही आये हो?"

"नहीं, कुली पीछे आ रहा है, सामान लेकर। मैंने सोचा, बिस्तरा ले ही चलूँ।"

"अच्छा किया, यहाँ तो बस..." कहकर मालती चुप रह गयी फिर बोली, "तब तुम थके होगे, लेट जाओ।"

"नहीं, बिलकुल नहीं थका।"

"रहने भी दो, थके नहीं, भला थके हैं?"

"और तुम क्या करोगी?"

"मैं बरतन माँज रखती हूँ, पानी आएगा तो धुल जाएँगे।"

मैंने कहा, "वाह!" क्योंकि और कोई बात मुझे सूझी नहीं...

थोड़ी देर में मालती उठी और चली गयी, टिटी को साथ लेकर। तब मैं भी लेट गया और छत की ओर देखने लगा... मेरे विचारों के साथ आँगन से आती हुई बरतनों के घिसने की खन-खन ध्वनि मिलकर एक विचित्र एक-स्वर उत्पन्न करने लगी, जिसके कारण मेरे अंग धीरे-धीरे ढीले पड़ने लगे, मैं ऊँघने लगा...

एकाएक वह एक-स्वर टूट गया – मौन हो गया। इससे मेरी तन्द्रा भी टूटी, मैं उस मौन में सुनने लगा...

चार खड़क रहे थे और इसी का पहला घंटा सुनकर मालती रुक गयी थी... वही तीन बजेवाली बात मैंने फिर देखी, अबकी बार उग्र रूप में। मैंने सुना, मालती एक बिलकुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस, यन्त्रवत् – वह भी थके हुए यन्त्र के से स्वर में कह रही है, "चार बज गये", मानो इस अनैच्छिक समय को गिनने में ही उसका मशीन-तुल्य जीवन बीतता हो, वैसे ही, जैसे मोटर का स्पीडो मीटर यन्त्रवत् फ़ासला नापता जाता है, और यन्त्रवत् विश्रान्त स्वर में कहता है (किससे!) कि मैंने अपने अमित शून्यपथ का इतना अंश तय कर लिया... न जाने कब, कैसे मुझे नींद आ गयी।

**तभी ग्यारह का घंटा बजा, मैंने अपनी भारी हो रही पलकें उठा कर अकस्मात् किसी अस्पष्ट प्रतीक्षा से मालती की ओर देखा। ग्यारह के पहले घंटे की खड़कन के साथ ही मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे-धीरे बैठने लगी, और घंटा-ध्वनि के कम्पन के साथ ही मूक हो जानेवाली आवाज़ में उसने कहा, "ग्यारह बज गये..."**

तब छह कभी के बज चुके थे, जब किसी के आने की आहट से मेरी नींद खुली, और मैंने देखा कि महेश्वर लौट आये हैं और उनके साथ ही बिस्तर लिये हुए मेरा कुली। मैं मुँह धोने को पानी माँगने को ही था कि मुझे याद आया, पानी नहीं होगा। मैंने हाथों से मुँह पोंछते-पोंछते महेश्वर से पूछा, "आपने बड़ी देर की?"

उन्होंने किंचित् ग्लानि-भरे स्वर में कहा, "हाँ, आज वह गैंग्रीन का आपरेशन करना ही पड़ा, एक कर आया हूँ, दूसरे को एम्बुलेन्स में बड़े अस्पताल भिजवा दिया है।"

मैंने पूछा" गैंग्रीन कैसे हो गया।"

"एक काँटा चुभा था, उसी से हो गया, बड़े लापरवाह लोग होते हैं यहाँ के..."

मैंने पूछा, "यहाँ आपको केस अच्छे मिल जाते हैं? आय के लिहाज से नहीं, डॉक्टरी के अभ्यास के लिए?"

बोले, "हाँ, मिल ही जाते हैं, यही गैंग्रीन, हर दूसरे-चौथे दिन एक केस आ जाता है, नीचे बड़े अस्पतालों में भी..."

मालती आँगन से ही सुन रही थी, अब आ गयी, "बोली, "हाँ, केस बनाते देर क्या लगती है? काँटा चुभा था, इस पर टाँग काटनी पड़े, यह भी कोई डॉक्टरी है? हर दूसरे दिन किसी की टाँग, किसी की बाँह काट आते हैं, इसी का नाम है अच्छा अभ्यास!"

महेश्वर हँसे, बोले, "न काटें तो उसकी जान गँवाएँ?"

"हाँ, पहले तो दुनिया में काँटे ही नहीं होते होंगे? आज तक तो सुना नहीं था कि काँटों के चुभने से मर जाते हैं..."

महेश्वर ने उत्तर नहीं दिया, मुस्करा दिये। मालती मेरी ओर देखकर बोली, "ऐसे ही होते हैं, डॉक्टर, सरकारी अस्पताल है न, क्या परवाह है! मैं तो रोज़ ही ऐसी बातें सुनती हूँ! अब कोई मर-मुर जाए तो ख़याल ही नहीं होता। पहले तो रात-रात-भर नींद नहीं आया करती थी।"

तभी आँगन में खुले हुए नल ने कहा – टिप् टिप् टिप्-टिप्-टिप्-टिप्...

मालती ने कहा, "पानी!" और उठकर चली गयी। खनखनाहट से हमने जाना, बरतन धोए जाने लगे हैं...

टिटी महेश्वर की टाँगों के सहारे खड़ा मेरी ओर देख रहा था, अब एकाएक उन्हें छोड़कर मालती की ओर खिसकता हुआ चला। महेश्वर ने कहा, "उधर मत जा!" और उसे गोद में उठा लिया, वह मचलने और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

महेश्वर बोले, "अब रो-रोकर सो जाएगा, तभी घर में चैन होगी।"

मैंने पूछा, "आप लोग भीतर ही सोते हैं? गरमी तो बहुत होती है?"

"होने को तो मच्छर भी बहुत होते हैं, पर यह लोहे के पलंग उठाकर बाहर कौन ले जाये? अब के नीचे जाएँगे तो चारपाइयाँ ले आएँगे।" फिर कुछ रुककर बोले, "आज तो बाहर ही सोएँगे। आपके आने का इतना लाभ ही होगा।"

टिटी अभी तक रोता ही जा रहा था। महेश्वर ने उसे एक पलंग पर बिठा दिया, और पलंग बाहर खींचने लगे, मैंने कहा, "मैं मदद करता हूँ", और दूसरी ओर से पलंग उठाकर निकलवा दिये।

अब हम तीनों... महेश्वर, टिटी और मैं, दो पलंगों पर बैठ गये और वार्तालाप के लिए उपयुक्त विषय न पाकर उस कमी को छुपाने के लिए टिटी से खेलने लगे, बाहर आकर वह कुछ चुप हो

गया था, किन्तु बीच-बीच में जैसे एकाएक कोई भूला हुआ कर्त्तव्य याद करके रो उठता या, और फिर एकदम चुप हो जाता था... और कभी-कभी हम हँस पड़ते थे, या महेश्वर उसके बारे में कुछ बात कह देते थे...

मालती बरतन धो चुकी थी। जब वह उन्हें लेकर आँगन के एक ओर रसोई के छप्पर की ओर चली, तब महेश्वर ने कहा, "थोड़े-से आम लाया हूँ, वह भी धो लेना।"

"कहाँ हैं?"

"अँगीठी पर रखे हैं, काग़ज़ में लिपटे हुए।"

मालती ने भीतर जाकर आम उठाये और अपने आँचल में डाल लिये। जिस काग़ज़ में वे लिपटे हुए थे वह किसी पुराने अखबार का टुकड़ा था। मालती चलती-चलती सन्ध्या के उस क्षण प्रकाश में उसी को पढ़ती जा रही थी... वह नल के पास जाकर खड़ी उसे पढ़ती रही, जब दोनों ओर पढ़ चुकी, तब एक लम्बी साँस लेकर उसे फेंककर आम धोने लगी।

मुझे एकाएक याद आया...बहुत दिनों की बात थी... जब हम अभी स्कूल में भरती हुए ही थे। जब हमारा सबसे बड़ा सुख, सबसे बड़ी विजय थी हाज़िरी हो चुकने के बाद चोरी से क्लास से निकल भागना और स्कूल से कुछ दूरी पर आम के बग़ीचे में पेड़ों पर चढ़कर कच्ची आमियाँ तोड़-तोड़ खाना। मुझे याद आया... कभी जब मैं भाग आता और मालती नहीं आ पाती थी तब मैं भी खिन्न-मन लौट आया करता था।

**चाँदनी में शिशु कैसा लगता है इस अलस जिज्ञासा से मैंने टिटी की ओर देखा और वह एकाएक मानो किसी शैशवोचित वामता से उठा और खिसक कर पलंग से नीचे गिर पड़ा और चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा।**

मालती कुछ नहीं पढ़ती थी, उसके माता-पिता तंग थे, एक दिन उसके पिता ने उसे एक पुस्तक लाकर दी और कहा कि इसके बीस पेज रोज़ पढ़ा करो, हफ़्ते भर बाद मैं देखूँ कि इसे समाप्त कर चुकी हो, नहीं तो मार-मार कर चमड़ी उधेड़ दूँगा। मालती ने चुपचाप किताब ले ली, पर क्या उसने पढ़ी? वह नित्य ही उसके दस पन्ने, बीस पेज, फाड़ कर फेंक देती, अपने खेल में किसी भाँति फ़र्क न पड़ने देती। जब आठवें दिन उसके पिता ने पूछा, "किताब समाप्त कर ली?" तो उत्तर दिया..."हाँ, कर ली," पिता ने कहा, "लाओ, मैं प्रश्न पूछूँगा, तो चुप खड़ी रही। पिता ने कहा, तो उद्धत स्वर में बोली, "किताब मैंने फाड़ कर फेंक दी है, मैं नहीं पढ़ूँगी।"

उसके बाद वह बहुत पिटी, पर वह अलग बात है। इस समय मैं यही सोच रहा था कि वह उद्धत और चंचल मालती आज कितनी सीधी हो गयी है, कितनी शान्त, और एक अखबार के टुकड़े को तरसती है... यह क्या, यह...

तभी महेश्वर ने पूछा, "रोटी कब बनेगी!"

"बस, अभी बनाती हूँ।"

पर अबकी बार जब मालती रसोई की ओर चली, तब टिटी की कर्त्तव्य-भावना बहुत विस्तीर्ण हो गयी, वह मालती की ओर हाथ बढ़ा कर रोने लगा और नहीं माना, मालती उसे भी गोद में लेकर चली गयी, रसोई में बैठ कर एक हाथ से उसे थपकने और दूसरे से कई छोटे-छोटे डिब्बे उठाकर अपने सामने रखने लगी...

और हम दोनों चुपचाप रात्रि की, और भोजन की और एक-दूसरे के कुछ कहने की, और न जाने किस-किस न्यूनता की पूर्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

हम भोजन कर चुके थे और बिस्तरों पर लेट गये थे और टिटी सो गया था। मालती पलंग के एक ओर मोमजामा बिछाकर उसे उस पर लिटा गयी थी। वह सो गया था, पर नींद में कभी-कभी चौंक उठता था। एक बार तो उठकर बैठ भी गया था, पर तुरन्त ही लेट गया।

मैंने महेश्वर से पूछा, "आप तो थके होंगे, सो जाइये।"

वह बोले, "थके तो आप अधिक होंगे... अठारह मील पैदल चल कर आये हैं।" किन्तु उनके स्वर ने मानो जोड़ दिया... थका तो मैं भी हूँ।"

मैं चुप रहा, थोड़ी देर में किसी अपर संज्ञा ने मुझे बताया, वह ऊँघ रहे हैं।

तब लगभग साढ़े दस बजे थे, मालती भोजन कर रही थी।

मैं थोड़ी देर मालती की ओर देखता रहा, वह किसी विचार में – यद्यपि बहुत गहरे विचार में नहीं, लीन हुई धीरे-धीरे खाना खा रही थी, फिर मैं इधर-उधर खिसक कर, पर आराम से होकर, आकाश की ओर देखने लगा। पूर्णिमा थी, आकाश अनभ्र था।

मैंने देखा-उस सरकारी क्वार्टर की दिन में अत्यन्त शुष्क और नीरस लगने वाली स्लेट की छत भी चाँदनी में चमक रही है, अत्यन्त शीतलता और स्निग्धता से छलक रही है, मानो चन्द्रिका उन पर से बहती हुई आ रही हो, झर रही हो...

मैंने देखा, पवन में चीड़ के वृक्ष... गरमी से सूख कर मटमैले हुए चीड़ के वृक्ष... धीरे-धीरे गा रहे हों... कोई राग जो कोमल है, किन्तु करुण नहीं, अशान्तिमय है, किन्तु उद्वेगमय नहीं...

मैंने देखा, प्रकाश से धुँधले नीले आकाश के तट पर जो चमगादड़ नीरव उड़ान से चक्कर काट रहे हैं, वे भी सुन्दर दीखते हैं...

मैंने देखा – दिन-भर की तपन, अशान्ति, थकान, दाह, पहाड़ों में से भाप से उठकर वातावरण में खोये जा रहे हैं, जिसे ग्रहण करने

के लिए पर्वत-शिशुओं ने अपनी चीड़ वृक्षरूपी भुजाएँ आकाश की ओर बढ़ा रखी हैं...

पर यह सब मैंने ही देखा, अकेले मैंने... महेश्वर ऊँघे रहे थे और मालती उस समय भोजन से निवृत्त होकर दही जमाने के लिए मिट्टी का बरतन गरम पानी से धो रही थी, और कह रही थी..."अभी छुट्टी हुई जाती है।" और मेरे कहने पर ही कि "ग्यारह बजने वाले हैं," धीरे से सिर हिलाकर जता रही थी कि रोज़ ही इतने बज जाते हैं... मालती ने वह सब-कुछ नहीं देखा, मालती का जीवन अपनी रोज़ की नियत गति से बहा जा रहा था और एक चन्द्रमा की चन्द्रिका के लिए, एक संसार के लिए रुकने को तैयार नहीं था...

चाँदनी में शिशु कैसा लगता है इस अलस जिज्ञासा से मैंने टिटी की ओर देखा और वह एकाएक मानो किसी शैशवोचित वामता से उठा और खिसक कर पलंग से नीचे गिर पड़ा और चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। महेश्वर ने चौंककर कहा – "क्या हुआ?" मैं झपट कर उसे उठाने दौड़ा, मालती रसोई से बाहर निकल आयी, मैंने उस 'खट्' शब्द को याद करके धीरे से करुणा-भरे स्वर में कहा, "चोट बहुत लग गयी बेचारे के।"

यह सब मानो एक ही क्षण में, एक ही क्रिया की गति में हो गया।

मालती ने रोते हुए शिशु को मुझसे लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा, "इसके चोटें लगती ही रहती है, रोज़ ही गिर पड़ता है।"

एक छोटे क्षण-भर के लिए मैं स्तब्ध हो गया, फिर एकाएक मेरे मन ने, मेरे समूचे अस्तित्व ने, विद्रोह के स्वर में कहा – मेरे मन न भीतर ही, बाहर एक शब्द भी नहीं निकला – "माँ, युवती माँ, यह तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है, जो तुम अपने एकमात्र बच्चे के गिरने पर ऐसी बात कह सकती हो – और यह अभी, जब तुम्हारा सारा जीवन तुम्हारे आगे है!"

और, तब एकाएक मैंने जाना कि वह भावना मिथ्या नहीं है, मैंने देखा कि सचमुच उस कुटुम्ब में कोई गहरी भयंकर छाया घर कर गयी है, उनके जीवन के इस पहले ही यौवन में घुन की तरह लग गयी है, उसका इतना अभिन्न अंग हो गयी है कि वे उसे पहचानते ही नहीं, उसी की परिधि में घिरे हुए चले जा रहे हैं। इतना ही नहीं, मैंने उस छाया को देख भी लिया...

इतनी देर में, पूर्ववत् शान्ति हो गयी थी। महेश्वर फिर लेट कर ऊँघ रहे थे। टिटी मालती के लेटे हुए शरीर से चिपट कर चुप हो गया था, यद्यपि कभी एक-आध सिसकी उसके छोटे-से शरीर को हिला देती थी। मैं भी अनुभव करने लगा था कि बिस्तर अच्छा-सा लग रहा है। मालती चुपचाप ऊपर आकाश में देख रही थी, किन्तु क्या चन्द्रिका को या तारों को?

तभी ग्यारह का घंटा बजा, मैंने अपनी भारी हो रही पलकें उठा कर अकस्मात् किसी अस्पष्ट प्रतीक्षा से मालती की ओर देखा। ग्यारह के पहले घंटे की खड़कन के साथ ही मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे-धीरे बैठने लगी, और घंटा-ध्वनि के कम्पन के साथ ही मूक हो जानेवाली आवाज़ में उसने कहा, "ग्यारह बज गये..."

# कविता

**पूनम गूँजा**
पुरी, ओडिशा

## स्त्री

जब तक स्त्री सुनती है, चुप रहती है,
घर के सारे काम करती है,
हाँ में हाँ मिलाती है, बिना सही गलत समझे,
तब तक हि लोग उसे कुलिन, समझदार, संस्कारी,
अच्छा होने का पदक देते हैं।

एक बार जो उसने गलत के खिलाफ आवाज़ उठाई,
अपने हक के लिए कुछ कहा,
लोगों को सारी बुराइयां उसी स्त्री मे नज़र आ जाती है।

अपने हक के लिए जो आवाज़ ना उठाए,
वो जीते जी हर पल मरता है।
अच्छा है, बुरा हो जाना।। सहने से तो बेहतर है।।